महिमामयी नारी

• -महासती श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवताः।"

इस छोटे से श्लोकांश से हमारी आज की बात शुरू होती है। इसमें कहा गया है कि जहाँ स्त्रियाँ पूजनीय दृष्टि से देखी जाती हैं, वहाँ देवता भी आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते हैं।

इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि नारी नर की सबसे बड़ी शक्ति रही है। नारी के बल पर ही वह अपने निर्दिष्ट पथ पर बढ़ता चला गया है और अनेकानेक विपत्तियों का मुकाबिला करता रहा है। मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने का श्रेय नारी जाति को ही है। अनेकानेक महापुरुष हुए हैं जो नारी के सहज व स्वाभाविक गुणों से प्रेरणा पाकर अपने पथ पर अग्रसर हो सके हैं। इसलिये सदा से मानव नारी का कृतज्ञ रहा है और उसे श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखता रहा है। जयशंकर प्रसाद ने इस युग में भी यही कहा है -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥

नारी ने त्याग, प्रेम, उदारता, सहिष्णुता, वीरता तथा सेवा आदि अपने अनेक गुणों से मानव को अभिभूत किया है, उसे विनाश के मार्ग पर जाने से रोका है। वह छाया की तरह पुरुष के जीवन में संगिनी बनकर रही है। पुत्री, बहन, पत्नी तथा माता बनकर उसने अपने पावन कर्त्तव्यों को निभाया है। इसलिये बड़े आदर युक्त शब्दों में उसके लिये कहा है -

कार्येषु मन्त्री, करणेषु दासी,
भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला, क्षमया धरित्री,
भार्या च षड्गुण्यवती सु दुर्लभा॥

अर्थात् प्रत्येक कार्य में मन्त्री के समान सलाह देने वाली, सेवादि में दासी के समान कार्य करने वाली, भोजन कराने में माता के समान, शयन के समय रम्भा के सदृश सुख देने वाली, धर्म के अनुकूल तथा क्षमा गुण को धारण करने में पृथ्वी के समान, इन छह गुणों से युक्त पत्नी दुर्लभ होती है। जो नारी इन गुणों से अलंकृत होती है वह अपने पितृकुल तथा श्वसुरकुल दोनों को ही स्वर्गतुल्य बना देती है। आनन्द व वैभव का उस गृह में साम्राज्य होता है। ऐसे ही गृहों में देवताओं का निवास माना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीनक काल में, जिसे हम वैदिक काल भी कहते हैं, नारियों का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा आदरयुक्त था। गार्गी, मैत्रेयी तथा लोपामुद्रा जैसी अनेक विदुषी नारियाँ हुई हैं जिन्होंने वेदों की ऋचाएँ भी लिखी हैं। हमारे जैन शास्त्रों में भी अनेक विदुषी सतियों के नाम व कथानक प्राप्त होते हैं। महसती सीता, चन्दनबाला, ब्राह्मी तथा सुन्दरी आदि सोलह सतियाँ तो हुई ही हैं, जिनके नाम को तथा गुणों को हम आज भी प्रतिदिन प्रभात में याद करते हैं।

मैत्रेयी संसार को घृणा की दृष्टि से देखती थी। जब याज्ञवल्क्य अपनी विदुषी सहधर्मिणी मैत्रेयी को सब कुछ देकर वन जाने को प्रस्तुत हुए तब पतिपरायणा मैत्रेयी बोली-अगर ऐश्वर्य से भरी हुई पृथ्वी भी मुझे मिल जाएगी तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- धन से तुम अमर नहीं हो सकोगी पर सुखी हो जाओगी। मैत्रेयी ने कह दिया -जिससे मैं अमर नहीं हो सकूंगी उसे लेकर क्या करूँगी?

कितनी गम्भीर दार्शनिकता से उसने जीवन की ओर तथा वैभव की ओर दृष्टिपात किया था?

छाया के समान राम का अनुसरण करने वाली सीता ने बिना राम की सहायता के ही कर्त्तव्य निर्दिष्ट कर लिया था। वन गमन के सारे क्लेशों को सहने के लिये स्वयं तैयार हो गई थी। किन्तु अकारण ही पति द्वारा निर्वासित की जाने पर भी उसने अपने धैर्य को नहीं छोड़ा। उसका सारा जीवन ही साकार साहस है, जिस पर दैन्य की छाया कभी नहीं पड़ी।

नारी साक्षात प्रेरणा है। वैष्णव रामायण के अनुसार उर्मिला-जिसने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ते हुए अपने प्रियतम लक्ष्मण को नहीं रोका तथा चौदह वर्षों तक कठिन वियोग सहन किया। उर्मिला का यह त्याग तथा उसकी सहिष्णुता आज संसार में अमर है।

बुद्ध के द्वारा परित्यक्ता यशोधरा ने अपूर्व साहस द्वारा कर्त्तव्य पथ खोजा। अपने पुत्र को परिवर्धित किया और अन्त में सिद्धार्थ के प्रबुद्ध होकर लौटने पर कर्त्तव्य की गरिमा से गुरु बनकर उसके सामने गई। दीन, हीन बनकर अथवा प्रणय की याचिका बनकर नहीं। सती चन्दनबाला ने अनेक परीषह सहे। उसकी आत्म-शक्ति व तेज के प्रताप से लोहे की हथकड़ियाँ भी टूटकर बिखर गईं और वह देव-पूज्य बन गई। महापतिव्रता सती सुभद्रा का नाम भी आज इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित है।

प्राचीन काल में नारियाँ समाज में हीन नहीं समझी जाती थीं। पुरुषों के समान ही उन्हें सुविधाएँ मिलती थीं। उन्हें सच्चे रूप में अर्धांगिनी माना जाता था।

उस समय के भारत में जितने आदर्श स्वरूप देवी-देवताओं की मान्यता थी, उनमें स्त्री रूप का महत्त्व अधिक था। विद्या की देवी सरस्वती, धन की देवी लक्ष्मी, सौन्दर्य की रति तथा पवित्रता की प्रतीक गंगा थी। शक्ति के लिये महाकाली दुर्गा तथा पार्वती देवी की भी उपासना की जाती थी। वर्तमान में भी विद्या के लिये सरस्वती की, सम्पत्ति की कामना होने पर लक्ष्मी की तथा शक्ति के लिये काली की उपासना की जाती है। यहाँ तक कि पशुओं में भी बैल की नहीं, गाय की पूजा होती है। महापुरुषों के नामों में प्रथम स्त्रियों के ही नाम मिलते हैं यथा सीता-राम, राधा-कृष्ण, गौरी-शंकर। इस सबसे यही प्रतीत होता है कि महिमामयी नारी मनुष्य के जीवन का चहुँमुखी कवच है, जिसके कारण कठिनाइयाँ, दुःख, परेशानियाँ पुरुष तक नहीं पहुँच पातीं, जब तक कि वह विद्यमान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस काल में नारियों का आत्मिक विकास भी बहुत ऊँचा था। सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों को समान अधिकार था। अपनी विद्वत्ता एवं प्रतिभा के संस्कार अपनी सन्तान पर अंकित कर वे उन्हें पूर्ण गुणवान तथा नीति मान बना देती थी। धर्मपरायणा सती साध्वी तथा आत्मविश्वास से परिपूर्ण नारियों का मनोबल इतना दृढ़ होता था कि पुरुष उनकी अवहेलना नहीं कर पाते थे।

कृष्ण और सुदामा मित्र थे। वे बचपन में साथ-साथ पढ़े थे। बड़े होने पर कृष्ण तो द्वारिका के महाराज बन गये पर सुदामा एक दरिद्र ब्राह्मण ही बने रहे। यद्यपि वे विद्वान और भक्त थे। उनकी पत्नी बड़ी पतिपरायणा थी। प्रायः सुदामा उससे अपने बचपन की, तथा कृष्ण से मित्रता की चर्चा किया करते थे। एक दिन उनकी पत्नी ने सुदामाजी से द्वारिका जाने के लिए आग्रह पूर्वक कहा। उन्हें समझाया कि जब श्रीकृष्ण जैसे आपके मित्र हैं तो फिर आप इतनी तकलीफ में क्यों दिन व्यतीत कर रहे हैं?

सुदामा सन्तोषप्रिय भक्त थे। उन्हें धन की आकांक्षा रंच मात्र भी नहीं थी। प्रभु की भक्ति से ही उनका हृदय परिपूर्ण था। उन्होंने पत्नी से कहा -

मेरे हिये हरि के पद पंकज, बार हजार ले देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरि, ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा।

पर बावली पत्नी मानी नहीं। वह स्वयं तो कष्ट उठा सकती थी पर पति के कष्ट से उसका हृदय व्यथित रहता था। फिर बोली -

द्वारका लौं जात पिए! ऐसे अलसात तुम,
काहे को लजात भई कौन सी विचित्रई।
जौ पै सब जनम दरिद्र ही सतायो तो पै,
कौन काज आइ है कृपानिधि की मित्रई॥

यानि द्वारिका जाने में तुम्हें कितना आलस्य है प्रिय! जाने में लज्जा किस बात की है? मित्र के पास जाना कोई अनोखी बात है क्या? अगर सारा जीवन दरिद्रता में ही बीते तो फिर करुणा के सागर कृष्ण की मित्रता कब काम आएगी?

बिचारे सुदामा फिर क्या करते? पत्नी को मधुर उपालंभ देते हुए द्वारिका जाने के लिए तैयार हुए-

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहू जाम यही झक तेरे।
जो न कहो करिये तौ बड़ो दुख जैए कहाँ अपनी गति हेरे॥

आठों पहर तूने तो 'द्वारिका जाओ, द्वारिका जाओ' की रट लगा रखी है। मेरी इच्छा तो नहीं है मगर तेरा कहा न मानूं तो भी मेरी गति नहीं है। यही तो बड़ा दुःख है।

इस प्रकार पत्नी की अवहेलना न करके सुदामा कृष्ण के पास गए। जैसा कि उनकी सती पत्नी का विश्वास था, उन्होंने कृष्ण के द्वारा अत्यधिक आदर और स्नेह प्राप्त किया। वे अतुल वैभव के अधिकारी होकर लौटे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन-काल में सुदामा की पत्नी, महाकवि कालीदास की पत्नी तथा तुलसीदासजी की पत्नी रत्नावली आदि ऐसी ऐसी नारियाँ हो गई हैं जिन्होंने अपने पतियों के जीवन को बदल कर उन्हें महत्ता के शिखर पर पहुँचाया।

पर धीरे-धीरे मध्यकाल में परिस्थितियाँ कुछ बदल गईं। स्त्रियों की स्वतंत्रता कम हो गई और उनके प्रति पुरुषों की विचारधारा भी विपरीत दिशा में बहने लगी। कुछ नए आदर्श बिना सिर पैर के बनाए गए, उनके लिए कहा गया -

काम क्रोध लोभादिमय, प्रबल मोह कै धारि।
तिह मंह अति दारुन दुखद माया रूपी नारी॥

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मद व मोह आदि जो मनुष्य को दुःख देने वाले हैं, उनसे भी अधिक दारुण दुःख देने वाली मायामयी नारी है।

कहा गया कि स्त्रियों को कभी स्वतन्त्र नहीं रहने देना चाहिए। उसे कौमारावस्था में पिता के , युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहना चाहिए। मनुस्मृति में कहा है -

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

इस विधान के अनुसार नारियों की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति को रोक कर उनका स्थान घर तक ही सीमित कर दिया गया। फिर तो गृह साम्राज्ञी जैसे आदरयुक्त शब्द की जगह पैर की जूती कहकर उन्हें हीन साबित किया गया। बाल विवाह की प्रथा चालू कर दी गई। दो, चार, छः आठ वर्ष की कन्याओं के विवाह किये जाने लगे। जबकि यह उम्र उनके शिक्षा प्राप्त करने की होती है। फलस्वरूप दस-दस बारह बारह वर्ष की उम्र वाली विधवाओं की भरमार हो गई और उनका जीवन बड़ा दयनीय होने लगा।

जिस तरह से घास-फूस से आग दब नहीं सकती और कई गुना वेग से धधक उठती है, उसी तरह नारी जाति को दबाने की, उसके तेज को कुचलने की जितनी कोशिश की गई उतने ही वेग से उनका शौर्य समय समय पर प्रज्वलित हुआ। रानी दुर्गावती, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि के उदाहरण इतिहास में अमर रहेंगे। राजपूत ललनाओं के त्याग व वीरत्व के भी अनेक अनेक ज्वलंत उदाहरण हैं, जिन्होंने अपने शौर्य की कीर्तिपताका पुनः लहरा दी। अपने हाथों से पति को कवच पहनाकर वे उन्हें युद्ध में भेज देती थीं और साथ ही स्पष्ट शब्दों में चेतावनी भी दे देती थीं -

कंत लखीजे दोहि कुल, नथी फिरंती छांह।
मुड़िया मिलसी गेंदवो, मिले न धणरी बांह॥

प्रियतम! देखो दोनों कुलों (मेरे और अपने) का ध्यान रखना तथा अपनी छाया को मत देखना। अगर तुम युद्ध से भागकर आए तो तुम्हें मस्तक के नीचे रखने के लिये तकिया मिलेगा। पत्नी की बांह नहीं मिल सकेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह पति के चले जाने पर रो-रोकर अश्रुधारा प्रवाहित नहीं करती थी वरन् पूर्ण विश्वासपूर्वक अपनी सखी से कहती थी -

सखी अमीणा कंथ री, पूरी यह परतीत।
कै जासी सूर धंगड़े, के आसी रण जीत॥

हे सखी! मुझे अपने प्रियतम पर पूरा विश्वास है कि या तो वह युद्ध में जीतकर वापिस आएंगे अथवा लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त करेंगे। इतना कहकर भी उसे संतोष नहीं होता और अत्यन्त प्रेम-विह्वल होती हुई पति की प्रशंसा करती -

हूं हेली अचरज करूँ, घर में बाय समाय।
हाको सुणतां हूलसे, रण में कोच न माय॥

हे सखी! मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि मेरे प्रिय घर में तो मेरी बाहुओं में ही समा जाते हैं किन्तु युद्ध के नगाड़े सुनकर हुलास के मारे कवच में भी नहीं समाते।

अपने पति के प्रति राजपूत नारियों में कितना गर्व होता था। असीम प्रेम होता था, लेकिन पति के युद्ध से मुँह मोड़कर आने की अपेक्षा वे विधवा हो जाना पसन्द करती थीं। युद्ध में वीर गति पाने पर उनके गर्व एवं उत्साह का पारावार नहीं रहता था और अपने मृत पति को लेकर वे हँसते हँसते वापिस उनके शीघ्रतम मिलने के लिये चिता पर चढ़ जाया करती थीं। उस समय भी वे अपनी सखियों को कहना नहीं भूलती थीं -

साथण ढोल सुहावणो, देणो मो सह दाह।
उरसां खेती बीज धर, रजवट उलटी राह॥

अर्थात् हे सखी! जब अपने प्रिय के साथ मैं चिता पर चढ़ूँ उस समय तुम बहुत ही मधुर ढोल बजाना। राजपूतों की तो यही उलटी रीति है कि उनकी खेती पृथ्वी पर होती है किन्तु फल आकाश में प्राप्त होता है। इन उदाहरणों से यह साबित हो जाता है कि नारी ने ऐसे नाजुक समय में भी, जबकि उन्हें अत्यन्त तुच्छ माना जाने लगा था, अपनी महिमा को कम नहीं होने दिया, बल्कि और गौरवान्वित ही किया. राजपूत नारियों के जीवित त्याग के ऐसे उदाहरण विश्व में और कहीं भी नहीं मिल सकते। यह ठीक है कि उस समय की सतीत्व की कल्पना विवेकपूर्ण न हो और सतीत्व की कसौटी आत्मदाह है भी नहीं, तथापि इससे नारी के उत्सर्ग स्वभाव में कोई कमी नहीं आती।

अब इस नवीन युग में स्त्रियों ने अपना उचित स्थान पुनः प्राप्त कर लिया है। वे सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में बड़ी सफलता के साथ काम कर रही है। श्रीमती इन्दिरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री थी। भारतकोलिका सरोजिनी नायडू गवर्नर थीं। विजयलक्ष्मी पण्डित अमेरिका में राजदूत आदि के रूप में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करती रही है। सुचेता कृपलानी उत्तरप्रदेश के शासन की सूत्रधार रही हैं।

बहनों को भी ऐसे आदर्श अपने सामने रखने चाहिये। इनसे प्रेरणा लेनी चाहिये। पुरुषों की हिंसक वृत्ति तो चरम सीमा तक पहुँच चुकी है। उन्होंने दो विश्वयुद्ध कर लिये, अब तीसरे युद्ध की भी आशंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अणुबम, परमाणुबम, हाइड्रोजनबम आदि-आदि अनेक प्रकार के बम वे बना चुके हैं, और उनसे भी अधिक भयंकर शस्त्रों के आविष्कार कर रहे हैं। आप लोगों को पुरुषों की इस हिंसक व विद्वेषपूर्ण वृत्ति को स्नेहजल से प्लावित करना है। तात्पर्य यही है कि पुरुषों की बराबरी करके और उनके समान अधिकार पा करके भी आप लोगों को सन्तुष्ट नहीं होना है। आपको पुरुष जाति पर अपना प्रभाव डालना है, उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति को संयत बनाना है और इस तरह विश्व शान्ति की स्थापना में योग देना है।

आपका सबसे महान् कर्त्तव्य अपने नन्हें बालकों पर सुसंस्कार डालने का है। उनका हृदय बड़ा कोमल होता है। कुम्हार मिट्टी के कच्चे घड़े को चाहे जैसी आकृति दे सकता है। कच्चे बाँस को चाहे जैसे मोड़ा जा सकता है। उसी तरह बच्चों की बुद्धि बड़ी सरल तथा अनुकरणशील होती है, अतः माता चाहे तो अपने पुत्र को महान्, सदाचारी, वीर तथा प्रतापी बना सकती है।

शिवाजी को वीर उनकी माता जीजाबाई ने बनाया था। माता के ही संस्कारों के कारण आगे जाकर शिवाजी ने औरंगजेब के छक्के छुड़ा दिये थे। गाँधीजी को भी उनकी माता ने ही जगत् पूज्य बनाया था। विलायत जाने से पहले वे गाँधीजी को एक जैन सन्त के पास ले गई। और उन्हें मांसाहार, परस्त्री-गमन तथा शराब पीने का त्याग करवा दिया। शंकराचार्य को ज्ञान की चोटी पर उनकी माता ने ही पहुँचाया था।

आप चाहें तो अपने घर को स्वर्ग बना सकती हैं और आप चाहें तो नरक। अपने त्याग, प्रेम व स्वभाव के माधुर्य से घर को नन्दन कानन बनाइये। आपका व्यक्तित्व इतना सुन्दर होना चाहिये कि प्रत्येक बात आपके पति सुदामाजी की तरह मानें। आप में अपूर्व शक्ति भरी हुई है सिर्फ उसे पहचानने की आवश्यकता है।

कुछ लोगों की विचारधारा होती है कि स्त्रियों का कार्य तो घर में चूल्हा-चक्की तक ही सीमित होना चाहिये, अधिक पढ़ाने से क्या लाभ? आप लोग इस भुलावे में कदापि न आएँ। अपनी कन्याओं को बराबर शिक्षित बनायें पर साथ ही उनमें उच्च संस्कार डालने का प्रयत्न करें, पढ़ने-लिखने का तात्पर्य अधिकाधिक फैशनेबिल बनना, अपने माता-पिता की अवज्ञा करना नहीं है। पढ़ने का असली उद्देश्य अपने गृह का सुप्रबन्ध करना तथा आपत्ति-विपत्ति के समय पति की सहायता करना भी है। गलत रास्ते पर जाते हुए पति को चतुराई से मोड़ना भी शिक्षा का ही अंग है। प्रसिद्ध विद्वान् लेखक प्रेमचन्दजी ने भी कहा है-

"पुरुष शस्त्र से काम लेता है तथा स्त्री कौशल से। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान होती है।"
विक्टर ह्यगो ने तो यहाँ तक कहा है -

"Man have sight, woman insight."

अर्थात् मनुष्य को दृष्टि प्राप्त होती है तो नारी को दिव्य दृष्टि।

बहनो ! आपको अपनी दिव्य दृष्टि खोनी नहीं है वरन् और प्रखर बनानी है। प्राचीन काल से आपकी जिस महिमा को देव भी गाते रहे हैं, उसे कायम रखना है। नारी सदा से महिमामयी रही है, इसे साबित करना है। तभी हमारे राष्ट्र का कल्याण होगा।

* * * * * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org